14

मीमांसा दर्शन

प्रस्तावना

भारतीय शास्त्रीय परम्परा में बहुत से दर्शन दीर्घकाल से प्रसिद्ध हैं। उनमें मुख्यतः दो भाग होते हैं- आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन। यहाँ आस्तिक पद से ईश्वर को स्वीकार करना अभिप्राय है। जो दर्शन वेद का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं, वे आस्तिक दर्शन है और जो दर्शन वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं, वे नास्तिक दर्शन कहलाते हैं। सांख्य-योग-न्याय-वैशेषिक-पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा छः भारतीय आस्तिक दर्शन प्रसिद्ध हैं।

छः भारतीय दर्शनों में साक्षात् वेद को आश्रित करके दर्शन प्रवृत्त हैं, वे पूर्व मीमांसा दर्शन और उत्तर मीमांसा दर्शन हैं। मीमांसा शब्द का अर्थ पूजित विचार है। उत्तर मीमांसा दर्शन वेदान्त दर्शन नाम से एवं पूर्व मीमांसा दर्शन ने मीमांसा दर्शन नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। इनके मध्य में मीमांसा दर्शन कर्मकाण्डात्मक वेदभाग के विचार के लिए प्रवृत्त है। अर्थात् वेद के कर्मकाण्ड में विहित विषयों की जहाँ चर्चा होती है, और जहाँ वेदविहित विषयों में संशय होने पर समाधान प्राप्त होता है वही पूर्व मीमांसा दर्शन है। धर्म जिज्ञासा ही वहाँ मुख्य विषय है। उत्तरमीमांसा दर्शन वेदान्त दर्शनत्व से प्रसिद्ध है। वहाँ ज्ञानकाण्डीय विषयों का अर्थात् उपनिषद् में प्रतिपादित विषयों का विस्तार से विचार प्राप्त होता है। ब्रह्मजिज्ञासा ही वहाँ मुख्य विषय है। इस पाठ में मीमांसा दर्शन नामक पूर्व मीमांसा दर्शन ज्ञेय है।

भारतीय दर्शनों में वेद के मुख्यत्व के कारण उसका क्या दर्शन है, इस ज्ञान के लिए मीमांसा दर्शन अवश्य पढ़ना चाहिए। इस समय वैदिक याग-यज्ञ आदि का प्रचलन वैसा नहीं दिखता है। उससे इस दर्शन के विषय में अनेक अज्ञ ही हैं। और भी, अन्य दर्शनों में आलोचित अनेक विषयों सम्यक् ज्ञान के लिए मीमांसा दर्शन अवश्य ज्ञेय है। और वेदान्त दर्शन भी सम्यक् तभी बोधित होता है, जब पूर्व मीमांसा दर्शन सम्यक् रूप से

टिप्पणी

ज्ञात हो, क्योंकि वे दर्शन समान तन्त्र हैं। उसके कारण मीमांसा, दर्शन का अवश्य अध्ययन करना चाहिए।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- पूर्व मीमांसा के दर्शन के विषय में संक्षेप से परिचय प्राप्त कर पाने में;
- मीमांसकों के ग्रन्थ के विषय में संक्षेप से परिचय प्राप्त कर पाने में;
- मीमांसकों के मत में प्रमाणों को जान पाने में;
- नैयायिक स्वीकृत उपमान से मीमांसक स्वीकृत उपमान का भेद जान पाने में;
- प्रामाण्य के विषय में परिचय प्राप्त कर पाने में;
- अभिहितान्वयवाद के विषय में और अन्विताभिधानवाद के विषय में परिचय प्राप्त कर पाने में;
- मीमांसा में स्वीकृत पदार्थों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- वेद लक्षण के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- धर्म लक्षण के विषय में परिचय प्राप्त कर पाने में;
- मीमांसकों के मत में क्या मोक्ष है, यह जान पाने में।

14.1 मीमांसा दर्शन के आचार्य और ग्रन्थ

प्रत्येक भारतीय दर्शन ऋषि द्वारा प्रणीत हैं। मीमांसा दर्शन के ऋषि महर्षि जैमिनि हैं। उनका काल प्राय: चतुर्थ शताब्दी ईसा0 पू0 है। उनके द्वारा विरचित द्वादशलक्षणी नामक ग्रन्थ पूर्व मीमांसा दर्शन का मुख्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में बारह अध्याय, 60 पाद और 2744 सूत्र व्याप्त है। मीमांसा दर्शन के ऊपर संकर्षण काण्ड नामक चार अध्यायों वाला ग्रन्थ, उनके द्वारा विरचित है, ऐसा कुछ कहते हैं। मीमांसा सूत्र के ऊपर बहुत से भाष्य ग्रन्थ रचित है। उनमें शबर स्वामी का शाबर भाष्य ही सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। शबर स्वामी के परवर्ती काल में तीन टीकाकारों के मतों के अनुसार मीमांसा दर्शन के तीन सम्प्रदाय समुद्भुत हुए। वे तीन टीकाकार हैं- प्रभाकरमिश्र कुमारिलभट्ट और मुरारिमिश्र। प्रभाकरमिश्र के मत का अनुसरण करके जो सम्प्रदाय है, वह प्रभाकर सम्प्रदाय, कुमारिलभट्ट के मत का अनुसरण करके जो सम्प्रदाय हुआ, वह भाट्ट सम्प्रदाय, ये दो सम्प्रदाय ही अधिक प्रसिद्ध है। इन दोनों सम्प्रदायों को छोड़कर मुरारि का तृतीय पन्थ है। यह मुरारिमिश्र का भी मिश्र सम्प्रदाय प्रसिद्ध था। परन्तु मिश्र सम्प्रदाय के ग्रन्थ

अब उपलब्ध नहीं होते हैं। प्रभाकर मत गुरूमत नाम से प्रसिद्ध है। प्रभाकरमिश्र के शाबर भाष्य के ऊपर बृहती और लघ्वी दो टीका ग्रन्थ विद्यमान हैं। प्रभाकर मतानुसारी शालिकनाथ ने प्रभाकर कृत लघ्वी टीका के ऊपर दीपशिखा और बृहती टीका के ऊपर ऋजुविमला, दो ग्रन्थ रचे। शालिकनाथ ने प्रभाकर मतानुसार प्रकरण पञ्चिका, प्रकरण ग्रन्थ रचा। कुमारिल भट्ट ने शाबर भाष्य का आवलम्बन करके श्लोकवार्तिक, तन्त्रावार्तिक और टुप्टी टीका, ये तीन ग्रन्थ रचे। कुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डनमिश्र ने मीमांसानुक्रमणिका, विधिविवेक, भावनाविवेक, विभ्रमविवेक ग्रन्थों को लिखा। भट्ट मतानुसार लिखित पार्थसारथिमिश्र की शास्त्रदीपिका, गंगाभट्ट की भाट्टचिन्तामणि, नारायण भट्ट का मानमेयोदय आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। मीमांसकों के तीन सम्प्रदाय हैं- भाट्ट सम्प्रदाय, प्रभाकर सम्प्रदाय और मिश्र सम्प्रदाय।

14.2 मीमांसा दर्शन में प्रमाण

दर्शनों का विचार करके विषयों में अन्यतम होते हैं- प्रमाण। मीमांसा दर्शन में भी प्रमाण की आलोचना की गई है। इस दर्शन में छः प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि।

14.2.1 प्रत्यक्ष

इन्द्रिय सन्निकर्ष से उत्पन्न प्रमाण प्रत्यक्ष कहलाता है। यहाँ इन्द्रिय सन्निकर्ष, इसके द्वारा इन्द्रियार्थ सन्किर्ष से उत्पन्न बोद्धव्य है। इन्द्रिय के साथ जब विषय का सन्किर्ष होता है तब प्रत्यक्ष प्रमाण से विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है। और वह प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार है- सविकल्पक और निर्विकल्पक। इन्द्रिय के साथ विषय के सन्निकर्ष से अव्यवहित होने के बाद ही विषय का जो अस्पष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है, वह निर्विकल्पक ज्ञान कहलाता है। इस ज्ञान में विषय का अस्पष्ट रूप से ज्ञान होता है, इस कारण से यह सम्मुग्ध ज्ञान अथवा अस्पष्ट ज्ञान कहलाता है। इसीलिए कुमारिलभट्ट के द्वारा श्लोकवार्तिक में कहा जाता है- ''अस्ति हि आलोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पम्'' जैसे घट दर्शन में घटत्व वर्जित घट मात्र का जो ज्ञान होता है वह निर्विकल्पक ज्ञान है। निर्विकल्प के प्रत्यक्ष के अनन्तर विशेष रूप से वस्तु का जो ज्ञान होता है वह सविकल्पक ज्ञान कहलाता है। निर्विकल्पक ज्ञान स्वीकार न हो तो सविकल्प ज्ञान स्वीकार नहीं किया जा सकता है। सविकल्पक ज्ञान की उत्पत्ति के लिए निर्विकल्प ज्ञान स्वीकार करना चाहिए। सविकल्प प्रत्यक्ष में विषय का सुस्पष्टता से ज्ञान होता है, इस कारण से सविकल्पक प्रत्या को व्यक्त ज्ञान अथवा स्पष्ट ज्ञान कहते हैं। सविकल्पक ज्ञान में विशिष्ट विषय का ज्ञान होता है यथा घट ज्ञान पर घटत्व विशिष्ट घट का ज्ञान होता है। इसका अर्थ है- जिस प्रमाण से व्याप्ति विशिष्ट पदार्थ के ज्ञान इन्द्रिय सन्निकर्ष विषय का ज्ञान उत्पन्न होता है, वह अनुमान प्रमाण कहलाता है। पर्वत पर धूम प्रत्यक्ष प्रमाण से गृहीत

टिप्पणी

है। परन्तु अग्नि इन्द्रिय के असन्निकृष्ट होने से प्रत्यक्ष द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता है। वह तो अनुमान द्वारा ग्रहण होता है। अनुमान शरीर है- पर्वतः धूमवान्, वह्नित्वात्।

व्याप्ति दो प्रकार की हैं- अन्वय व्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति। साधन के सद्भाव में साध्य का सद्भाव अन्वय व्याप्ति होता है। साध्य के अभाव में साधन का अभाव व्यतिरेक व्याप्ति कहलाता है। मीमांसक भिन्न दृष्टि से अनुमान को बहुत प्रकार से विभाजित करते हैं। इस प्रकार अनुमान तीन हैं- अन्वयव्यतिरेकी, केवलान्वयी और केवल व्यतिरेकी। पुनः अनुमान दो प्रकार का है- वीत और अवीत। वीत पुनः दो प्रकार का है- दृष्ट और सामान्यतो दृष्ट। स्वार्थानुमान और परार्थानुमान के भेद से अनुमान पुनः दो प्रकार का है।

प्रभाकर के मत में धूम के साथ वह्नि का सम्बन्ध एक बार निश्चित होता है तो व्याप्ति का निश्चय होता है। भूयोदर्शन केवल उपाधि की आशंका निवृत्ति के लिए है। मानमेयोदयकार के मत में व्याप्ति एक स्वाभाविक सम्बन्ध है। स्वाभाविक का अर्थ है उपाधि रहित। उससे व्याप्ति एक उपाधि रहित सम्बन्ध है, ऐसा जाना जाता है। अनुमान शरीर के विषय में नैयायिक जैसे प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, ये पञ्चावयव न्याय स्वीकार करते हैं, मीमांसक वैसा स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में तीन अवयव को स्वीकार करने पर कार्यसिद्धि के लिए पञ्चावयव स्वीकार करने के द्वारा प्रयोजन नहीं है। उसके कारण मीमांसक प्रारम्भ के तीन अवयव अथवा अन्तिम के तीन अवयव स्वीकार करते हैं।

14.2.3 शब्द

मीमांसक अनुमान प्रमाण के अनन्तर शब्द प्रमाण को स्वीकार करते हैं। मीमांसकों के मत में शब्द प्रमाण सभी प्रमाणों की अपेक्षा गुरूत्वपूर्ण है। आप्त वाक्य ही शब्द है। किसी भी वाक्य के अन्तर्गत पदों के अर्थबोध से अनन्तर प्रत्यक्ष के द्वारा अज्ञात अर्थ का ज्ञान होता है, वह शब्द ज्ञान कहा जाता है। कहा गया है-

तत्र तावत् पदैर्ज्ञातैः पदार्थस्मरणे कृते।
असन्निकृष्ट वाक्यार्थज्ञानं शाब्मितीर्यते॥

शब्द ज्ञान में पदार्थ ही करण है, वाक्यार्थ का अवबोध फल है। शब्द प्रमाण दो प्रकार का है- पौरूषेय और अपौरूषेय। मीमांसकों के मत में आप्त वाक्य पौरूषेय है, वेदवाक्य अपौरूषेय है। प्रभाकर में दोष होते हैं, उससे पौरूषेय वाक्य प्रमाण पदवी को प्राप्त नहीं करते। इसीलिए कहा जाता है-

अपौरूषेये वेदे तु पुरूषस्पर्शसन्नतः।
कल्यो न विशङ्क्येत तत् कुतो व्यभिचारिता॥

इसका अर्थ है- पुरूष दोष अपौरूषेय वेद में शंकित होते हैं, उससे अपौरूषेय वेद का ही प्रामाण्य है, व्यभिचारों के अभाव के कारण।

शाब्द ज्ञान पुनः दो प्रकार का है- सिद्धार्थ वाक्य और विधायक वाक्य। जब किसी वाक्य से सिद्ध अर्थ का ज्ञान होता है तब वह सिद्धार्थ वाक्य कहलाता हैं यथा- यह तुम्हारा पुत्र है, यह वाक्य सिद्धार्थ वाक्य है। इस वाक्य में सिद्ध अर्थ का प्रतिपादन विद्यमान होता है, यह क्रिया अनुष्ठान का कर्तव्य है। जब किसी वाक्य से क्रियानुष्ठान का निर्देश प्राप्त होता है, तब वह विधायक वाक्य कहलाता है। यथा-'स्वर्गकामो यजेत', यह वाक्य विधायक वाक्य है। इस वाक्य में निर्देश प्राप्त होता है कि जो स्वर्ग की कामना करता है, वह योग करे। उस कारण यह विधायक वाक्य है।

14.2.4 उपमान

मीमांसा दर्शन में उपमान स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में स्वीकृत है। सादृश्य ज्ञान उपमिति है, उसका करण उपमान है। अर्थात् सादृश्य ज्ञान जिस प्रमाण से निश्चित होता है वह उपमान कहलाता है। जैसे-कोई गो नामक प्राणी को जानता है परन्तु गवय नामक प्राणी को नहीं जानता है। गवय किस प्रकार का है, इस ज्ञान के लिए वह उपदिष्ट है कि-गो के समान गवय है। तब वह वन में गोसदृश प्राणि को देखकर गो के समान नील गाय (गवय) है, इस उपदेश को स्मरण करते हुए वन में देखे प्राणी में पूर्वज्ञात गो सादृश्य देखा और पूर्व में दृष्ट गाय में गवय सादृश्य को निश्चित करता है। एवं पूर्व में देखी गई गौ यह गवय सदृश है, यह पूर्वदृष्ट गौ में गवय-सादृश्य का ज्ञान उपमिति है, यह कहा जाता है। उपमिति का करण उपमान प्रमाण है, यह कारण से गवय में गो सादृश्य का दर्शन उपमान प्रमाण है। गो में गवय सादृश्य का निश्चित ज्ञान उपमिति है, अर्थात् उपमान का फल है। उसके कारण मानमेयोदय में कहा जाता है-

गवयस्थितसादृश्यदर्शनं करणं भवेत्।
फलं गोगत सादृश्य ज्ञानमित्यवगम्यताम्॥

न्याय दर्शन में भी उपमान स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाता है। परन्तु नैयायिकों के उपमान से मीमांसकों के उपमान में भेद है। जैसे- न्यायदर्शन के मत में और मीमांसा दर्शन के मत में गवय में गो सादृश्य का दर्शन उपमान है परन्तु उपमान के अनन्तर ''पूर्वदष्टः गौः एतद्गवयसदृशः'', यह पूर्वदृष्ट गौ में गवय सादृश्य का ज्ञान उपमिति है, यह मीमांसा दर्शन का मत है। नैयायिक मत में उपमान से अनन्तर 'गवयत्वविशिष्ट पशु गवय वाच्य है', यह ज्ञान उपमिति है।

14.2.5 अर्थापत्ति

मीमांसा दर्शन और अद्वैतवेदान्त दर्शन में अर्थापत्ति स्वतन्त्र रूप से प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाता है। अर्थापत्ति शब्द से अर्थापत्ति प्रमा और अर्थापत्ति प्रमाण जाने जाते हैं। अर्थापत्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'अर्थस्य आपत्तिः' यह स्वीकार की जाती है तो अर्थापत्ति शब्द यथार्थ ज्ञान को बोधित करता है, 'अर्थस्य आपत्तिः यस्मात्', यह व्युत्पत्ति

स्वीकार करे तो अर्थापत्ति शब्द प्रमाण को बोधित करता है। मानमेयोदय में कहा जाता है- अन्यथानुपत्त्या यदुपपादककल्पनम् तदर्थापत्तिः इत्येवं लक्षणं भाष्यभाषितम्। इसका अर्थ है- जब कोई ज्ञान अन्य रूप से उत्पन्न नहीं होता, तब उसके व्याख्यान के लिए जो उपपादक कल्पित है वह अर्थापत्ति प्रमाण में जानने योग्य हैं। वेदान्त परिभाषाकार लौगाक्षिभास्कर के द्वारा अर्थापत्ति का लक्षण किया गया- ''उपपाद्यज्ञानेन उपपादककल्पनम् अर्थापत्तिः''। यहाँ उपपाद्य ज्ञान करण है और उपपादक-कल्पना फल है। जैसे- स्थूलः देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते, इस वाक्य से दिन में न खाने वाला देवदत्त का स्थूलत्व नहीं उत्पन्न होता है, इस कारण से उसके स्थूलत्व के उपपत्ति के लिए रात्रिभोजन कल्पित है। यह रात्रि भोजन का ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा भी नहीं और अनुमान द्वारा भी ग्रहण नहीं किया जा सकता है, इस कारण से अर्थापत्ति प्रमाण द्वारा यह स्वीकार किया जाता है, ऐसा अङ्गीकर्तव्य है। यहाँ उपपाद्य दिन में नहीं खाने वाले देवदत्त का स्थूलत्व और उपपादक रात्रि-भोजन है।

अनुमान में व्याप्ति बोधक वाक्य अपेक्षित है, परन्तु अर्थापत्ति में व्याप्ति वाक्य का यर्थार्थ नहीं है, उससे अर्थापत्ति प्रमाण अनुमान में अन्तर्निहित नहीं होता है। इसलिए-स्थूल देवदत्त दिन में नहीं खाता है, इस वाक्य में यदि वाप्ति वाक्य इस प्रकार से स्वीकार किया जाता है- जो दिन में नहीं खाने से मोटा है, वे रात्रि भोजन करने से है तो योगी-सिद्ध पुरूष आदि में व्यभिचार दोष होता है। योगिजन और सिद्ध पुरूष दिन और रात्रि में नहीं खाने पर भी स्थूल होते हैं। अतः व्याप्ति ज्ञान के अभाव से अर्थापत्ति का अनुमान में अन्तर्भाव नहीं होता है।

अर्थापत्ति दो प्रकार का है- दृष्टार्थापत्ति और श्रुतार्थापत्ति। दृष्ट के अर्थ की उपपत्ति के लिए यदा अन्यार्थ कल्पना की जाती है तब वह दृष्टार्थापत्ति कहा जाता है। जैसे- जीवित देवदत्त गृह में नहीं है, यह देखकर वह गृह से बाहर है, ऐसी कल्पना की जाती है, यह दृष्टार्थापत्ति है। जब पुनः वाक्य का कोई अंश सुनकर अर्थसिद्धि के लिए अन्यार्थ की कल्पना की जाती है तब श्रुतार्थापात्ति कही जाती है। जैसे- 'द्वार' यह शब्द मात्र को सुनकर समीप में स्थित जन 'बन्द करें' यह शब्द ग्रहण करके व्यवहार करता है। यह श्रुतार्थापत्ति है।

14.2.6 अनुपलब्धि

भाट्ट मीमांसा दर्शन और अद्वैत वेदान्त दर्शन में अनुपलब्धि स्वतन्त्रता से प्रमाण रूप में स्वीकृत है। उनके मत में अनुपलब्धि प्रमाण के रूप अभाव ज्ञान होता है। नैयायिक अनुपलब्धि को पृथक प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ही अभाव का ज्ञान सम्भव होता है, उससे अनुपलब्धि पृथक् रूप से स्वीकार्य नहीं है। प्रभाकर मीमांसकों के मत में अभाव स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है, अभाव ही अधिकरण का स्वरूप है, और अधिकरण से अभिन्न है। उससे अभाव ग्रहण के लिए पृथक् प्रमाण स्वीकार्य नहीं है। परन्तु भाट्ट मीमांसक और अद्वैत वेदान्ती अनुपलब्धि

को प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं। वे कहते है कि भाव पदार्थ के ग्रहण के लिए प्रत्यक्ष आदि प्रमाण प्रयुक्त होते हैं, अभाव ग्रहण के लिए नहीं। उसके कारण अभाव ग्रहण के लिए अनुपलब्धि प्रमाण स्वीकार्य है।

मानमेयोदय में अनुपलब्ध का लक्षण कहा जाता है-

''अथापेलम्भनयोग्यत्वे सत्यप्यनुपलम्भनम्।
अभावाख्यं प्रमाणं स्यादभावस्यावबोधनम्।।

इसका अर्थ है- यदि कोई वस्तु इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष योग्य होने पर भी वह प्रत्यक्ष नहीं होता है, तो अप्रत्यक्ष के द्वारा उस वस्तु के अभाव का ज्ञान होता है। एवं इस अभाव का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है, वह अनुपलब्धि प्रमाण अथवा अभाव प्रमाण है। जैसे-भूतल पर घट नहीं है, इस दृष्ट में चक्षु इन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने योग्य घट के अदर्शन के कारण घटाभाव का ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण के द्वारा उत्पन्न होता है।

इस प्रकार से संक्षेप सें मीमांसा दर्शन में स्वीकृत छः प्रमाण दिए गए हैं-

प्रमाण

1. प्रत्यक्ष 1) सविकल्पक 2) निर्विकल्पक
2. अनुमान 1) केवलान्वयी 2) अन्वयव्यतिरेकी 3) केवल व्यतिरेकी
3. शब्द 1) पौरूषेय 2) अपौरूषेय
4. उपमान
5. अर्थापत्ति 1) दृष्टार्थापत्ति 2) श्रुतार्थापत्ति
6. अनुपलब्धि

पाठगत प्रश्न 14.1

1. कितने भारतीय आस्तिक दर्शन हैं।

   (क) चार (ख) पाँच (ग) छः (घ) सात

2. उत्तर मीमांसा दर्शन का नामान्तर क्या है?
3. जैमिनि के द्वारा प्रणीत पूर्वमीमांसा दर्शन के ग्रन्थ का नाम क्या है?
4. अनुपलब्धि प्रमाण किस अर्थ में स्वीकार किया जाता है।

   (क) भाव पदार्थ ग्रहण के लिए (ख) अभाव पदार्थ ग्रहण के लिए

टिप्पणी

5. मीमांसक अनुमान वाक्य में कितने अवयवों को स्वीकार किया जाता है।

(क) तीन (ख) चार (ग) पाँच (घ) सात

6. प्रत्यक्ष कितने प्रकार का है? नाम लिखिए।

7. अर्थापत्ति कितने प्रकार का है? नाम लिखिए।

8. वेदान्त परिभाषाकार मत में अर्थापत्ति का लक्षण क्या है?

14.3 मीमांसा दर्शन में प्रामाण्य विचार

प्रमाण विचार के अनन्तर प्रमाणों के प्रामाण्य के विषय में विचार किया जाएगा। ज्ञान ही दो प्रकार का है- यथार्थ ज्ञान और अयथार्थ ज्ञान। यथार्थ ज्ञान ही प्रमा और अयथार्थ ज्ञान अप्रमा कहा जाता है। ज्ञान प्रमा है तो वहाँ प्रमाण का प्रामाण्य रहता है, ज्ञान अयथार्थ होता है तो उसमें प्रमाण का अप्रामाण्य रहता है। परन्तु ज्ञान का प्रामाण्य अथवा अप्रामाण्य कैसे उत्पन्न होता है अथवा कैसे जाना जाता है, इस विषय को आश्रित करके भारतीय दर्शन सम्प्रदायों में दो मत उदभुत हुए- स्वतः प्रामाण्यवाद और परतः प्रामाण्यवाद। प्रामाण्य स्वतः है अथवा परतः, इस विषय में दार्शनिकों का मतभेद विद्यमान है।

सांख्य प्रामाण्य और अप्रामाण्य स्वतः होता है, ऐसा कहते हैं, नैयायिक प्रामाण्य और अप्रामाण्य परतः होता है, ऐसा मानते है, बौद्धमत में अप्रामाण्य स्वतः, प्रामाण्य तो परतः होता है, मीमांसकों के मत में प्रामाण्यं स्वतः और अप्रमाण्य परतः होता है। इसीलिए सर्वदर्शनसंग्रह में कहा जाता है-

प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः सांख्याः समाश्रिताः।
नैयायिकास्ते परतः सौगताश्चरमं स्वतः।

प्रथमं परतः प्राहुः प्रामाण्यं वेदवादिनः।
प्रमाणं स्वतः प्राहु परतश्चाप्रमाणताम्।

14.3.1 स्वतः प्रमाण्य और परतः अप्रामाण्य

तीन मीमांसक ही स्वतः प्रमाण्यवादी हैं। इनके मत में जिन कारणों से ज्ञान की उत्पत्ति होती है, उन कारणों के द्वारा ही ज्ञान का प्रामाण्य भी उत्पन्न होता है। जैसे जिस सामग्री बल से घट ज्ञान की उत्पत्ति होती है, उसके ही द्वारा सामग्री बल से घट ज्ञान के प्रमात्व की उत्पत्ति होती है। ज्ञान के प्रमात्व की उत्पत्ति ज्ञान सामग्री के अतिरिक्त अन्य कारण से अपेक्षित नहीं होता है। और भी जिसके द्वारा ज्ञान होता है, उसके द्वारा ही ज्ञान का प्रमात्व भी जाना जाता है। उससे ज्ञान का प्रामाण्य स्वतः ही उत्पन्न होता है और जाना जाता है। परन्तु ज्ञान का अप्रमाण्य ज्ञान सामग्री के बिना अन्य कारण

टिप्पणी

भी अपेक्षा करता है, इस कारण से अप्रामाण्य स्वतः निश्चित नहीं होता अपि तु परतः निश्चित होता है।

14.4 अभिहितान्वयवाद और अन्विताभिधानवाद

पदों के द्वारा अर्थज्ञान की पद्धति क्या है, इस विषय में मीमांसक सम्प्रदाय में दो मत प्रसिद्ध हैं- कुमारिलभट्ट का अभिहितान्वयवाद और प्रभाकर का अन्विताभिधानवाद। अभिहितान्वयवादियों के मत में एक वाक्य में प्रयुक्त पदों का अर्थज्ञान आदि में होता है, उससे वाक्य में उनका अन्वय होता है। पदों से अभिहित अर्थ का वाक्य में अन्वय स्वीकार किया जाता है, इस कारण से ये अभिहितान्वयवादी हैं।

अन्विताभिधानवादियों के मत में पदों का वाक्य में अन्वय से अनन्तर अभिहित अर्थ का ज्ञान होता है, अर्थात् पद परस्पर वाक्यान्वित हैं और अर्थज्ञान को उत्पन्न करते हैं, वे पृथक् रूप से अर्थबोध के लिए समर्थ नहीं होते हैं। पदों के अन्वय से अनन्तर अभिहित अर्थ का बोध स्वीकार किया जाता है, इसी कारण से ये अन्विताभिधानवादी हैं।

14.5 पदार्थ

कुमारिलभट्ट और प्रभाकर के मत में दो ही पदार्थ हैं- प्रमाण और प्रमेय। इनके मध्य में प्रमाणों की आलोचना हमारे द्वारा पूर्व में ही की गई है। प्रमाणों के संख्या के विषय में जैसे कुमारिल के साथ प्रभाकर का मतभेद होता है, वैसे ही प्रमेयों की संख्या के विषय में भी दोनों के मत में पार्थक्य होता है। भाट्टमत में प्रमेय पाँच हैं- द्रव्य, जाति, गुण, क्रिया और अभाव। प्रभाकर मत में प्रमेय आठ हैं- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, शक्ति, संख्या और सादृश्य। परिमाण आश्रयत्व द्रव्यत्व है, यह द्रव्य का लक्षण है। भाट्ट मत में ग्यारह (11) द्रव्य हैं- पृथिवी, जल, तेज, वायु, तम, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन और शब्द।

जाति व्यक्ति में अवस्थित होता है, नित्य, प्रत्यक्ष का विषय, व्यक्तितः और भिन्न-अभिन्न है। कुमारिलभट्ट के मत में जाति व्यक्ति में तादात्म्य सम्बन्ध से रहता है। इस मत में समवाय स्वीकार नहीं किया जाता है। प्रभाकर समवाय सम्बन्ध को आश्रित करके जाति-जातिमान के सामानिधकरण की व्याख्या करते हैं। ये जाति-जातिमान के तादात्म्य सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करते हैं। और भी, ये नैयायिक स्वीकृत समवाय सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं।

कुमारिल भट्ट अभाव को पदार्थत्व द्वारा स्वीकार करते हैं, परन्तु प्रभाकर अभाव को अतिरिक्त पदार्थत्व द्वारा स्वीकार नहीं करते हैं। भाट्ट मत में अनुपलब्धि प्रमाण द्वारा अभाव ग्रहीत है। प्रभाकर मत में 'अभावाख्यः पदार्थस्तु नास्ति'। इसके मत में अभाव अधिकरण स्वरूप है।

टिप्पणी

14.6 धर्म लक्षण

मीमांसा दर्शन में विचार का विषय धर्म है। मीमांसा दर्शन के प्रणेता आचार्य जैमिनि द्वादशलक्षणी ग्रन्थ के प्रारम्भ में सूत्र का प्रण करने के लिए ''अथातो धर्म जिज्ञासा'' करते हैं। उससे मीमांसा दर्शन के अनुसार धर्म क्या है, यह ज्ञातव्य है। धर्म के विषय में मीमांसा सूत्र में कहा गया है- ''चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः''। यद्यपि चोदना पद का अर्थ प्रेरकत्व है तथापि यहाँ चोदना पद का अर्थ विधिरूप वेद है। उसके कारण वेद में जो कर्तव्य रूप से प्रतिपादित है, वही धर्म है, ऐसा ज्ञातव्य है। अर्थसंग्रहकार लौगक्षिभास्कर के मत में याग आदि ही धर्म है। धर्म का लक्षण है- ''वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मः''। वेद द्वारा प्रतिपादित जो विषय है, और जो प्रयोजनवान् (अर्थवान्) होता है, वह धर्म है। इसलिए भोजन यद्यपि प्रयोजन से युक्त है तथापि वह स्वाभाविक है, वेद प्रतिपाद्य नहीं, उससे भोजन धर्म नहीं है। श्येन आदि याग वेद द्वारा प्रतिपादित हैं तो भी धर्म नहीं है क्योंकि उसमें अर्थवत्त्व नहीं है, अनर्थवत्त्व ही है। स्वाध्योऽध्येतव्यः, यह वेद वाक्य से प्रत्येक वेद पाठ का कर्तव्यपूर्ण विधान है, यह अर्थवत्त्व भी विद्यमान है, इस कारण से स्वाध्याय धर्म है, यह ज्ञातव्य है। 'यजेत स्वर्गकामः' इस वेद वाक्य द्वारा विहित है कि जो स्वर्ग की इच्छा करता है, वह याग करे। यहाँ वेद प्रतिपाद्यत्व है, अर्थवत्व भी है, इस कारण से यह धर्म हैं।

14.7 भावना-विचार

'यजेत् स्वर्गकामः' इत्यादि वाक्य से स्वर्ग को उद्देश्य करके पुरूष याग का विधान करता है। 'यजेत', यहाँ अंशत्रय विद्यमान हैं, यजि धातु और प्रत्यय। प्रत्यय में भी अंशत्रय दो होते हैं- आख्यातत्व और लिङ्त्व। वहाँ आख्यातत्व दश लकारों में भी साधारण लिङ्गमात्र में ही लिङ्गत्व विद्यमान होता है।

'यजेत', यहाँ जो दो अंश विद्यमान है, वहाँ दोनों अंशों को भी भावना कहा जाता है। भावना क्या है तो अर्थसंग्रहकार द्वारा कहा जाता है- भावना नाम भवितुर्भवनानुकूलः भावयितुः व्यापारविशेषः। इसका अर्थ है- भविता के उत्पद्यमान का भावना अनुकूल उत्पत्ति के अनुकूल भावयिता द्वारा उत्पन्न प्रयोजक का व्यापार विशेष भावना है। यथा-ओदन के पकने में उत्पद्यमान ओदन के उत्पत्ति के अनुकूल देवदत्त का व्यापार विशेष भावना है, यह अर्थ है। यथा-यजेत स्वर्गकामः, यहाँ उत्पद्यमान धातु-अर्थ अथवा स्वर्ग के उत्पत्ति अनुकूल स्वर्ग की इच्छा का व्यापार और उत्पद्यमान और स्वर्गकाम प्रवृत्ति के उत्पत्ति अनुकूल लिङ्ग व्यापार विशेष है।

वह भावना दो प्रकार की है- शाब्दी भावना और आर्थी भावना।

14.7.1 शाब्दी भावना

शाब्दी भावना, आर्थी भावना, इनके मध्य में शाब्दी भावना है- पुरूषप्रवत्यनुकूलः भावयितुः व्यापारविशेषः। और वह लिङ्ग, अंश द्वारा कहा जाता है। लिङ्-श्रवण में मां प्रवर्तयति, मत्प्रवृत्ति के अनुकूल व्यापार से युक्त यह शाब्दबोध नियम द्वारा ही प्रतीत होता है। जो जिस शब्द से नियम से प्रतीत होता है वह उसका वाच्य है। यथा-गाम् आनय (गाय लाओ), इस वाक्य में गो शब्द का गोत्व।

और वह व्यापार विशेष लौकिक वाक्य में पुरुष निष्ठ अभिप्राय विशेष है। वैदिक वाक्य में तो पुरूष अभाव के कारण लिङ्ग आदि शब्द निष्ठ ही हैं। अत एव शाब्दी भावना व्यवहृत है।

14.7.2 आर्थी भावना

प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयव्यापारः आर्थी भावना/प्रयोजन का स्वर्ग आदि रूप फल की इच्छा से राग आदि विशेषण द्वारा जनित जो याग आदि क्रिया विषय पुरूष का व्यापारविशेष है, वह आर्थी भावना है, यह अर्थ है। और वह आख्यात अंश द्वारा कहा जाता है क्योंकि आख्यात सामान्य द्वारा व्यापार का बोध होता है।

पाठगत प्रश्न 14.2

1. मीमांसक मत में प्रामाण्य स्वतः है अथवा परतः?
2. प्रमा शब्द का क्या अर्थ है?
3. अभिहितान्वयवाद किसका है?

   (क) प्रभाकर का (ख) कुमारिलभट्ट का (ग) मुरारिमिश्र का
4. भाट्टमत में प्रमेयों की संख्या क्या है?

   (क) चार (ख) पाँच (ग) नौ (घ) बारह
5. अभाव नाम पदार्थ नहीं है, यह किसका मत है?
6. धर्म के विषय में मीमांसा सूत्र क्या है?
7. भावना कितने प्रकार की है? और वे क्या हैं?
8. भाट्टमत में कितने द्रव्य हैं?

टिप्पणी

14.8 वेद-लक्षण विचार

मीमांसा मत में वेद अपौरूषेय वाक्य है। क्योंकि जो पुरूष द्वारा किया जाता है, उसमें दोष ही होते हैं। दोष, भ्रम, प्रमाद, विलिप्सा आदि हैं। परन्तु वेद में भ्रम आदि दोष नहीं होते हैं। उस कारण से दोषाभाव होने के कारण वेद पुरूषकृत नहीं है, यह जानना चाहिए। अतः वेद अपौरूषेय है। और वह वेद पाँच प्रकार का है- विधि, मन्त्र, नाभधेय, निषेध, और अर्थवाद।

14.8.1 विधि

इनमें अज्ञात अर्थ का ज्ञापक वेदभाग विधि कहा जाता है। यथा- अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः, यह विधि है। जो स्वर्ग की इच्छा करता है, उसे अग्निहोत्र यज्ञ करना चाहिए, यह इसका अर्थ है। यह विधि वेद विना अन्य किसी भी प्रमाण के द्वारा नहीं जाना जा सकता। उस अज्ञात अर्थ का ज्ञापक होने के कारण यह वेदवाक्य विधिवाक्य कहा जाता है। और वह विधि चार प्रकार की है- उत्पत्तिविधि, विनियेग विधि, अधिकार विधि और प्रयोग विधि।

1. **उत्पत्ति विधि**

   उसमें कर्मस्वरूप मात्र बोधक विधि उत्पत्तिविधि है। यथा- 'अग्निहोत्रं जुहोति'। यहाँ विधि में कर्म का करण से अन्वय है। अग्निहोत्र होम के द्वारा इष्ट को प्राप्त करें।

2. **विनियोग विधि**

   अङ्ग प्रधान सम्बन्ध बोधक विधि विनियोग विधि है। यथा- दध्ना जुहोति। वह तृतीया द्वारा प्रतिपन्न अङ्गभाव दधि से होम का सम्बन्ध बताता है। दधि से होम करें।

   विनियोग विधि के सहकारीभूत छः प्रमाण हैं। वे हैं-

   श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान और समाख्या रूप।

   क) श्रुति- तत्र निरपेक्षः स्वः श्रुतिः। इसमें निरपेक्ष पद द्वारा प्रमाणान्तर निरपेक्ष, यह ज्ञातव्य है। उससे जो शब्द अन्य प्रमाण द्वारा अपेक्षित नहीं है, वह शब्द श्रुति है। वह तीन प्रकार की है - विधात्री, अभिधात्री और विनियोक्त्री है।

   ख) लिङ्ग- शब्द सामर्थ्य लिङ्ग है। जैसे कहा जाता है- ''सामर्थ्य सर्वशब्दानां लिङ्गमिव्यभिधीयते''। सामर्थ्य रूढ़ि ही है। जैसे- ''बर्हिर्देवसदनं दामि', इस मन्त्र का कुशलवनान्नत्व है, उपलादिलवनाअङ्गत्व नहीं।

   ग) वाक्य- समभिव्याहार वाक्य है। समभिव्याहार उच्चारण के साथ है। यथा- 'यस्य पर्णमयी जुर्हूभवति न स पापं श्लोकं श्रृणोति', यहाँ पर्णता जुहू का

टिप्पणी

समभिव्याहार से ही पर्णता का जुह्वत्व है।

घ) **प्रकरण**- उभयाकाक्षङ्क्षा प्रकरणम्। परस्पर दो वाक्यों की आकांक्षा होती है तो वह प्रकरण कहलाता है। जैसे- प्रयाजादि में 'समिधो यजति' इत्यादि वाक्य में फलविशेष के अनिर्देश के कारण समिद्याग द्वारा करना चाहिए, यह बोधान्तर क्या है, इस फल की आकांक्षा होती है। दर्शपूर्णमास वाक्य में भी 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्ग भावयेत्', यह बोधान्तर कैसे है, इस फल की आकांक्षा होती है। इस प्रकार दोनों आकांक्षा के द्वारा प्रयाज आदि के दर्शपूर्णमासाअङ्गत्व है।

और वह प्रकरण पुनः दो प्रकार का है- महाप्रकरण और अवान्तर प्रकरण। वहाँ मुख्य भावना सम्बन्धी प्रकरण महाप्रकरण है। और उससे प्रयाज आदि का दर्शपूर्णमासअङ्गत्व है। अङ्ग भावना सम्बन्धी प्रकरण अवान्तर प्रकरण है। और उसके द्वारा अभिक्रमण आदि का प्रयाज आदि अन्नत्व है।

ङ) **स्थान**- देशसामान्यं स्थानम्। स्थान पद द्वारा सन्निधि विशेष ही ज्ञेय है। स्थान और क्रम, अर्थान्तर नहीं है। वह दो प्रकार का है। पाठसोद्देश्य और अनुष्ठान सोद्देश्य। पाठ सोद्देश्य भी दो प्रकार का है- यथासन्निधिपाठ और यथासंख्यपाठ।

च) **समाख्या**- तत्र यौगिकः शब्दः समाख्या। शब्द चार प्रकार का है- यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ और यौगिकरूढ़। इनमें आध्वर्यव याचक इत्यादि यौगिक शब्द समाख्या है, यह ज्ञेय है। और वह समाख्या दो प्रकार की है- वैदिकी और लौकिकी।

इस प्रकार संक्षेप रूप में छः प्रमाण निरूपित हैं। इनमें श्रुति सभी की अपेक्षा बलवती है। समाख्या स्थान से बलवती है, स्थान से प्रकरण बलवान है, प्रकरण की अपेक्षा वाक्य बलवान है, वाक्य की अपेक्षा लिङ्ग बलवान है, और लिङ्ग की अपेक्षा श्रुति बलवती है।

3. अधिकार विधि।

कर्मजन्यफलस्वाम्यबोधकः विधिः अधिकारविधिः। यह कर्मजन्यफलस्वामीः कर्मजन्यफलभोक्तृत्व है। और वह 'यजेत स्वर्गकामः' इत्यादि रूप है। स्वर्ग को उद्देश्य करके याग का विधान इसके द्वारा स्वर्गकाम का यागजन्यफलभोक्तृत्व प्रतिपादित होते हैं। 'यस्याहिताग्नेरग्निर्गृहान् दहेत् सोऽग्नये क्षामवतेऽटाकपालं निर्वपेत्' इत्यादि द्वारा अग्निदाह आदि निमित्त में कर्म विदधता निमित्त के समान कर्मजन्यपापक्षयरूफलस्वाम्य भी प्रतिपादित है। एवं 'अहरहः सन्ध्याम् उपासीत' इत्यादि द्वारा शुचिविहित काल के जीवों में सन्ध्योपासन जन्य-प्रत्यवाय- परिहाररूप-और फलस्वाम्य को उत्पन्न करते हैं।

टिप्पणी

4. प्रयोगविधि

प्रयोगप्राशुभाव बोधक विधि प्रयोगविधि है। जिस विधिवाक्य के द्वारा प्रयोग का शीघ्रता सम्पादन का बोध होता है, वह प्रयोग विधि कहलाता है।

इस प्रकार चार प्रकार की विधियों का संक्षेप में प्रतिपादन किया गया है।

14.8.2 मन्त्र

'प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः मन्त्रः', यह मन्त्र का लक्षण है। जो वेद वाक्य कर्मानुष्ठान से सम्बद्ध द्रव्य देवता आदि पदार्थों को स्मरण करते हैं, वे मन्त्र वाक्य कहलाते हैं।

14.8.3 नामधेय

'विधेयार्थपरिच्छेदक वाक्य् नामधेयः'। जिन वाक्य के द्वारा विधेय का कर्तव्यता के द्वारा उपदिष्ट याग का परिच्छेद होता है, अर्थात् नाम जाना जाता है, वह नामधेय वाक्य है। जैसे- ''उद्भिदा यजेत पशुकामः'' नामधेय का उदाहरण है। यहाँ उद्भिदा पद के द्वारा याग सामान्य का विधान है, अपितु उद्भिदनामक याग के द्वारा पशुकाम यजेत है, ऐसा यागविशेष का विधान है।

14.8.4 निषेध

पुरूषस्य निवर्तक वाक्य निषेधः। यदि कोई कार्य पुरूष का अनर्थजनक हो तब वेदवाक्य उस कार्य से पुरूष निवृत्त होता है। जैसे- 'न कलञ्ज भक्षयेत्' इस निषेध वाक्य के अनर्थजनक कलञ्जभक्षण के कारण पुरूष निवृत्त होता है।

14.8.5 अर्थवाद

प्राशस्त्य-निन्दान्यतरपरं वाक्यम् अर्थवादः। जिस वेद वाक्य के स्वार्थ-प्रतिपादन में तात्पर्य नहीं होता किन्तु जो वेदवाक्य प्रशंसा द्वारा अथवा निन्दा द्वारा विधि अथवा निषेध कर्तव्याकर्तव्य सूचित करता है, वह अर्थवाद कहा जाता है। यथा- 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता', यह वेद वाक्य के द्वारा वायु का शीघ्रगामित्व सूचित होता है। वस्तुतः इस के द्वारा वायु की प्रशंसा की जाती है। और उसके द्वारा वायु शीघ्र फलदाता है, ऐसा सूचित है।

14.9 मोक्ष

प्राचीन मीमांसा दर्शन में स्वर्ग ही पुरूषार्थ है, ऐसा उक्त है। परन्तु परवर्ती काल में मीमांसक मोक्ष को परम पुरूषार्थ के रूप में स्वीकार करते हैं। शरीर आदि के साथ

जीव का सम्बन्ध ही बन्धन हैं जब शरीर आदि के साथ जीव का सम्बन्धनाश होता है तब मोक्ष होता है। जब तक शरीर रहता है, तब तक सुख-दु:ख का भोग सम्भव होता है। प्रभाकर के मत में मोक्ष में जीव के सभी प्रकार के दु:खों का आत्यन्तिक रूप से विनाश होता है। कुमारिलभट्ट के मत में काम्यनिषिद्ध कर्मों के परित्याग से नित्य, नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठान से सुख-दु:ख के भोग से जिसके सभी पाप क्षीण होते हैं, वह शम दम आदि से वेदान्त आदि के द्वारा प्रदर्शित उपाय के द्वारा आत्मतत्त्व के विचार से मोक्ष प्राप्त होता है। मोक्ष केवल दु:ख का अभाव ही नहीं, अपितु आनन्द की अभिव्यक्ति है। मोक्ष में शरीर का नाश होता है, उससे जीव का पुनर्जन्म नहीं होता है।

पाठगत प्रश्न 14.3

1. मीमांसा मत में वेद क्या है?
2. वेद कितने प्रकार का है? और वे क्या हैं?
3. विधि कितने प्रकार की है? और वे क्या हैं?
4. विनियोग विधि के सहकारी भूत कितने प्रमाण हैं?

   (क) चार (ख) पाँच (ग) छ: (घ) सात
5. प्रयोग विधि का लक्षण क्या है?
6. लिङ्ग प्रमाण की अपेक्षा कौन सा प्रमाण बलवान है?

   (क) श्रुति (ख) वाक्य (ग) स्थान (घ) समाख्या

पाठसार

मीमांसा दर्शन के जो विषय हैं, उनकी संक्षेप में आलोचना इस पाठ में विद्यमान है। मीमांसकों के मत में प्रमाण और प्रमेय दो ही पदार्थ हैं। भाट्टमीमांसा दर्शन में छ: प्रमाण स्वीकृत हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि। प्रभाकर (मीमांसक) अनुपलब्धि को प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं, उसके कारण वे पाँच ही प्रमाण स्वीकार करते हैं। प्रमाण के विषय में उनका मतभेद होने पर भी प्रामाण्य के विषय में उनका मतभेद नहीं है। मीमांसक प्रमाणों का प्रामाण्य स्वत: और अप्रामाण्य परत: होता है, यह स्वीकार करते हैं। वाक्य से अर्थबोध के विषय में मीमांसकों के दो मत प्रसिद्ध हैं। कुछ अभिहितान्वयवाद और कुछ अन्विताभिधानवाद को स्वीकार करते हैं। भाट्टमत में प्रमेय पाँच हैं- द्रव्य, जाति, गुण, क्रिया, और अभाव। प्रभाकर मत में तो प्रमेय आठ हैं- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, शक्ति, संख्या और सादृश्य।

टिप्पणी

मीमांसा दर्शन में विचार करके विषयों में अन्यतम धर्म है। उसका लक्षण ''वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थः धर्मः'' है। मीमांसासूत्र है- चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। यथा- स्वर्गकामो यजेत्, इस वेदवाक्य से स्वर्ग की कामना से याग का विधान है। वहाँ यजेत शब्द के श्रवण में किसी भी व्यापार में सुनी गई प्रवृत्ति दिखती है, वह भावना कहलाती है। उसका लक्षण है- ''भवितुः भवनानुकूलः भावयितुः व्यापारविशेषः''। वह दो प्रकार की है- शाब्दी और आर्थी।

मीमांसक मत में अपौरूषेय वाक्य ही वेद है। वेद पाँच प्रकार के हैं- विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद। इनमें अज्ञात अर्थ का ज्ञापक वेदभाग विधि हैं प्रयोग समवेत अर्थ स्मारक मन्त्र हैं। विधेय अर्थ परिच्छेदक वाक्य नामधेय है। पुरूष का निवर्तक वाक्य निषेध है। प्रशस्ति-निन्दा से युक्त वाक्य अर्थवाद है। विधि पुनः चार प्रकार की है- उत्पत्ति विधि, विनियोग विधि, अधिकार विधि और प्रयोग विधि। उसमें कर्मस्वरूपमात्र बोधक विधि उत्पत्ति विधि है। अन्न प्रधान सम्बन्ध बोधक विधि विनियोग विधि है। कर्मजन्य फल-सवाम्य की बोधक अधिकार विधि है। प्रयोग प्रशुभात की विधि प्रयोग विधि है। इनमें विनियोग विधि के सहकारी भूत छः प्रमाण हैं। वे हैं- श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यारूप। उसमें निरपेक्ष श्रुति है। शब्द सामर्थ्य ''लिङ्ग'' है। समभिव्याहार वाक्य हैं उभयाकांक्षा प्रकरण है। देश सामान्य स्थान है। वहाँ यौगिक शब्द समाख्या है। इनमें से पूर्व-पूर्व उत्तर-उत्तर की अपेक्षा से बलवान है। समाख्या से स्थान बलवान है, स्थान से प्रकरण बलवान है, प्रकरण की अपेक्षा से वाक्य बलवान है, वाक्य की अपेक्षा लिङ्ग बलवान है और लिङ्ग की अपेक्षा श्रुति बलवती है।

सभी भारतीय दर्शन पुरूषार्थ को आश्रित करके प्रवृत्त होते हैं। मीमांसा दर्शन भी पुरूष को आश्रित करके ही प्रवर्तित है। प्राचीन मीमांसा दर्शन में स्वर्ग लाभ ही मोक्ष है। परन्तु आधुनिक मीमांसकों के मत में जीव के शरीर सम्बन्ध का नाश ही मोक्ष है, वही परम पुरूषार्थ है। मोक्ष के होने पर जीव के आत्यान्तिक रूप के सभी प्रकार के दुःखों का विनाश होता हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. मीमांसक कितने प्रमाण स्वीकार करते हैं?
2. मीमांसक के मत में प्रत्यक्ष प्रमाण का परिचय दीजिए।
3. मीमांसक के मत में अनुमान का स्वरूप निरूपित कीजिए।
4. मीमांसक के मत में शब्द प्रमाण क्या है।
5. मीमांसकों के मत में अर्थापत्ति प्रमाण को निरूपित कीजिए।
6. मीमांसकों के मत में अनुपलब्धि प्रमाण को निरूपित कीजिए।

7. मीमांसकों में कौन अनुपलब्धि प्रमाण को स्वीकार नहीं करते हैं?
8. मीमांसक अनुपलब्धि प्रमाण को कैसे स्वतन्त्र रूप में स्वीकार करते हैं?
9. अर्थापत्ति कितने प्रकार की है?
10. मीमांसक मत में अनुमान कितने प्रकार का है?
11. नैयायिकों के उपमान प्रमाण से मीमांसकों का उपमान कहाँ भिन्न है?
12. प्रमा क्या है? और अप्रमा क्या है?
13. प्रामाण्य के विषय में मीमांसकों का मत निरूपित कीजिए।
14. प्रामाण्य के विषय में सांख्यों का मत क्या है?
15. प्रामाण्य के विषय में नैयायिकों का मत क्या है?
16. प्रामाण्य के विषय में बौद्धों का मत क्या है?
17. अभिहितान्वयवादी कौन हैं?
18. अभिहितान्वयवाद क्या है?
19. अन्विताभिधानवाद कौन स्वीकार करते हैं?
20. अन्तिवाभिधानवाद क्या है?
21. विधि का लक्षण क्या है?
22. अर्थवाद क्या है?
23. मीमांसकों में कौन अभाव को पदार्थत्व द्वारा स्वीकार नहीं करता है?
24. मन्त्र का क्या लक्षण है?
25. मीमांसकों के मत में मोक्ष किस प्रकार का है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-14.1

1. छः
2. वेदान्त दर्शन
3. द्वादशलक्षणी

टिप्पणी

4. (ख) अभाव पदार्थ के ग्रहण के लिए
5. तीन
6. प्रत्यक्ष दो प्रकार का है- सविकल्प और निर्विकल्प।
7. अर्थापत्ति दो प्रकार का है- दृष्टार्थापत्ति और श्रुतार्थापत्ति।
8. उपपद्य ज्ञान से उपपादक कल्पना अर्थापत्ति है।

उत्तर-14.2

1. प्रामाण्य स्वतः है, अप्रामाण्य परतः है।
2. यथार्थ ज्ञान
3. (ख) कुमारिल भट्ट का
4. (ख) पाँच
5. प्रभाकर का मत
6. चोदनालक्षणेऽर्थो धर्मः
7. भावना दो प्रकार की है- शाब्दी भावना और आर्थी भावना
8. ग्यारह

उत्तर-14.3

1. अपौरूषेय वाक्य वेद है।
2. वेद पाँच हैं- विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद।
3. विधि चार प्रकार की है- उत्पत्ति विधि, विनियोग विधि, प्रयोग विधि और अधिकार विधि।
4. (ग) छः
5. प्रयोगप्राशुभावबोधकः विधिः प्रयोगविधिः।
6. (क) श्रुति

।।चौदह पाठ समाप्त।।